लौहित्य साहित्य सेतु : सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित अर्धवार्षिक द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 1, संख्या: 1; जुलाई-दिसंबर, 2020

कुमार अनुपम की कविताएँ

1
महानगर में बुद्ध

अधरात कोई पीट रहा है
अपने कमरे का द्वार

एक कठोर जिद में उसकी बेचैनी
गुस्सा
और खीझ
दस्तक में बदल कर
बरस रहे हैं द्वार पर
प्रहार की तरह

अकेलेपन की आत्मदया और जर्जर कर रही
कि इस महानगर में उसकी पुकार

कोई नहीं सुन रहा न उसका परिवार
भीतर कोई
उसका है अपना एक
क्या इतने को
परिवार कहा जा सकता है

होता परिवार
तो माँ पिता चाचा चाची
बहन भाई में से
कोई न कोई
तो नींद में भी
अनक लेता घरवाले की आहट
और अपनी नींद की परवाह न कर
खोलकर कर द्वार
उसे बुला ही लेता भीतर
अपनी आत्मा की आँच में समेट लेता

किसी ऐसी ही स्मृति
के आवेग में वह काँप रहा होगा शायद
कि इस महानगर की रात में
जब सन्नाटे से अधिक शोर तरह तरह का
उस एक अकेले की पुकार
को
शरण
नहीं

सुन रहा हूँ उसकी विकलता-

मैं लिवा ही लाता अपने साथ
लेकिन दिशाभ्रम में
भटक रही है

जाने किस तरफ
उसकी याचना

उसका कोई आस-पड़ोस नहीं
जो कुछ देर के लिए
उसे अपना ले

बढ़ रही होगी उस अजनबी में इसीलिए करुण
आशंका
कि इस क्रूर महानगर में
जो है कोई द्वार के भीतर-
उसे कुछ हो न गया हो

अधिक विह्वल हो
खैरियत की दुआ से
द्वार पीटने लगता है और जोर से
लगातार

जैसे रेलगाड़ी गुजर रही है धड़ धड़ करती
धुआँ गाँव की ओर चला गया है

उसे महसूस हो रहा होगा
कि इस ठंड भरी अथाह रात में
एक टूटे हुए बाल की तरह
वह
खो गया है
जिसे जागना है जाग जाय
नहीं परवाह
जब एक वही नहीं सुन रहा है अधीर प्रार्थना
जिसके लिए समर्पित समस्त साध
और प्यार
वह खटखटाता रहेगा द्वार

मेरी पत्नी
जैसे प्रतीक्षा की रोजमर्रा आदत
से ऊब कर इस महानगर में
हो गई नींद-गोली का शिकार
हो न हो उसकी पत्नी भी...

उसकी गहरी सुकून भरी नींद में खलल
की गुस्ताखी ठीक नहीं
फिर भी
अपने ही द्वार पर एक बुद्ध
भिक्षुक की तरह खड़ा है
बेघरबार-
रातपाली से लौटा
वह थका हारा कामगार-।

2
यात्रा

हम चले
तो घास ने हट कर हमें रास्ता दिया

हमारे कदमों से

छोटी पड़ जाती थीं पगडंडियाँ
हम घूमते रहे
घूमती हुई पगडंडियों के साथ

हमारी लगभग थकान के आगे
हाजी नूरुल्ला का खेत मिलता था
जिसके गन्नों ने
हमें
निराश नहीं किया कभी
यह उन दिनों की बात है जब
हमारी राह देखती रहती थी
एक नदी

हमने नदी से कुछ नहीं छुपाया
नदी पर चलाए हाथ पाँव
जरूरी एक लड़ाई-सी लड़ी

नदी ने
धारा के खिलाफ
हमें तैरना सिखाया।

3

और फिर आत्महत्या के विरुद्ध

यह जो समय है
सूदखोर कलूटा सफेद दाग से चितकबरे जिस्मवाला
रात-दिन तकादा करता है
भीड़ ही भीड़
लगाती है ठहाका
कि गायबाना जिस्म हवा का और पिसता है

छोड़ता हूँ उच्छवास...
उच्छवास...
कि कठिनतम पलों में
जिसमें की ही आक्सीजन
अंततः जिजीविषा का विश्वास...
कहता हूँ कि जीवन जो एक विडम्बना है

गो कि कहना मना है
कहता हूँ
कि सोचना ही पड़ रहा है
कुछ और करने के बारे में
क्योंकि कम लग रहा है
अब तो मरना भी।

4

इतवार की इस दोपहर

ख्वाब और खलिश
से भरी हैं मेरी ख्वाहिशें

इस निचाट दोपहर-
जब प्रचंड है धूप
एक कबूतर
दीवार की संध में

'सेह' रहा है अपना अंडा

शुभेच्छा का करते हुए उद्घोष
कुछ लोग
सड़क साफ करने निकल आए हैं अप्रत्याशित
कुछ लोग हैं जो अचंभित
झाँक रहे हैं अपने परकोटों से
एक फूल
की और उज्ज्वल हो गई है हँसी
इतवार की इस दोपहर

जब बाहर धूप है चटख
एक बच्ची
अपनी आर्ट-कॉपी में
पैदा कर रही है एक नई नदी
साफ-सुथरा जल बना रही है

इतवार की इस दोपहर
जब धूप और धूल है अथाह
मैं याद करता हूँ
अब तक की यात्रा में
कितनी कितनी भटकनों ने काटा मेरा रास्ता

ठिठका रहा
कितने शब्दों के समक्ष विनम्रता से
उनके भीतर से फूटती हुई
पुरखा-कंठों की
ध्वनियों से माँगता हुआ अर्थ
एक स्वाद
याद आ रहा है अपरिचित स्नेह का

और
एक महानगरीय मित्र
की महिमामयीमीटिंगकीव्यस्तता

इतवार की इस दोपहर
जब धूप और धूल बेपनाह
और भूख है
कि धैर्य नहीं धरती है....।

5

छियो राम छियो

राप्ती के जल में
चेहरे तिरते हैं पुरखों के
जैसे बर्फ में दबी
एक नदी की गति

पहाड़
इच्छा से ऊँचे कभी नहीं रहे
जानते हैं यह
मैदान के बनजारे
उनके मौसमों के चोगे

धुले जाते हैं अब भी आठों याम

गाते हुए-

छियो राम छियो

छियो राम छियो...!

संपर्क-सूत्र:

ई-मेइल: artistanupam@gmail.com
मोबाइल: 9873372181